अनुबोधन, खण्ड 1, अंक 4, दिसम्बर 2025, पृष्ठ 71–82
ISSN: 3049-4184 (प्रिन्ट), 3108-1185 (ऑनलाइन)
प्रकाशित: **31 दिसम्बर 2025**
जर्नल वेबसाइट: **https://anubodhan.org**
DOI: 10.65885/anubodhan.v1n4.2025.032

हिन्दी साहित्य तथा भारतीय ज्ञान परम्परा में जीवन मूल्य

डॉ० संजीव कुमार*

सार

'ज्ञान' शब्द व्यापक है। इसका अर्थ केवल जानकारी या तथ्यों का संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि इसमें समझ, जागरूकता और अनुभव भी शामिल है। ज्ञान हमें दुनिया को समझने और उसके अनुसार कार्य करने में मदद करता है। भगवद गीता में श्री कृष्ण ने ज्ञान के महत्व को स्पष्ट रूप से बताया है। उन्होंने ज्ञान को आत्मा की सच्चाई और संसार की वास्तविकता को समझने का माध्यम बताया। श्री कृष्ण ने ज्ञान का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा "जो व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्तर पर एकत्व को महसूस करता है, वही सच्चा ज्ञानी है।"[1] अन्य शब्दों में, अपेक्षा रहित सत्य की स्वयं अनुभूति करना ही ज्ञान है।

भाषा मानव सभ्यता तथा संस्कृति की विरासत का महत्त्वपूर्ण अंग है, उसकी पहचान है। मानव हृदय के भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम भाषा कहलाता है। भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में प्रथम स्थान पर तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से सातवें स्थान पर है। भारत विविधताओं से परिपूर्ण देश है जिसमें अनेक धर्मों, वर्गों, सम्प्रदायों तथा जातियों के लोग रहते हैं। भारतीय भाषाओं के सन्दर्भ में संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित 22 भाषाएँ मान्यता प्राप्त हैं। हिन्दी भाषा भारत में सर्वाधिक बोली, लिखी, पढ़ी तथा समझी जाने वाली भाषा है। भारतीय संविधान की धारा 343 (1) के अनुसार भारतीय संघ की राजभाषा हिन्दी एवं लिपि देवनागरी है। संविधान की धारा 120 के अनुसार संसद का कार्य हिन्दी या अंग्रेजी में किया जाता है। हिन्दी भाषा भारत की

*सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय केंद्र, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश, E-mail: sanju26971@gmail.com

सामरिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय एकता का आधार है।

"साहित्य" शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द "लिटेरा" से हुई है, जिसका अर्थ है "वर्णमाला का एक अक्षर"। साहित्य का अंग्रेजी पर्याय शब्द 'लिटरेचर' है। साधारण शब्दों में, जो समाज के हित के साथ लिपिबद्ध हो अर्थात् जिसमें समाज सहित होने का भाव हो, वह साहित्य कहलाता है। रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्त-वृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता है।"[2]

बीज शब्द: *हिन्दी साहित्य, भारतीय, ज्ञान, परम्परा, जीवन मूल्य*

भारत एक राष्ट्र ही नहीं अपितु संस्कार, ज्ञान तथा आदर्श की कर्मभूमि है तथा हमेशा से प्रकृति का रमणीय रंगस्थल बना हुआ है। प्रकृति ने इसे अपने कर कमलों से सजाकर शोभा का आगार बनाया है। इसका बाह्य रूप अत्यधिक मनोरम है। उत्तर में हिमाच्छादित हिमालय, जिसकी ऊँची चोटियाँ मानो बाहरी संसार को भारत की आध्यात्मिक उन्नति का परिचय दे रही हैं। दक्षिण में हिन्द महासागर, जिसकी चंचल लहरें इसके चरण युगल को प्रक्षालित करती हुई शोभा का विस्तार कर रही हैं। पश्चिम में अरब सागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी। भारत का यह बाह्य रूप जितना ही भव्य तथा मनोहर है, उसका आंतरिक रूप उतना ही आभामय है।

भारत में अनेक ऋषि-मुनि तथा साधु संत हुए हैं जिन्होंने अपने ज्ञान तथा कौशल से वेदों, उपनिषदों, पुराणों इत्यादि अनेक विद्याओं को परम्परागत रूप से वर्तमान समय तक जीवित रखा है। "ज्ञान का मतलब है शिक्षा और शिक्षा के बिना मनुष्य पशु के समान है।"[3] भारतीय ज्ञान परम्परा एक पवित्र, निर्मल एवं निश्छल झरने के समान है। ज्ञान का विपुल भण्डार है। महाकाय सामग्री है। इसमें सहस्त्रों ऋषि-मुनियों की आस्था, मूल्य, आदर्श, दर्शन, ज्ञान, परम्पराएं, संस्कृति, संस्कार, पद्धतियाँ, कर्म, भक्ति एवं जीवंत भावनाएं समाहित हैं। यह एक व्यापक एवं विराट संचेतना है, जिसका हस्तांतरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लिए किया जाता है। भारतीय ज्ञान परम्परा के अंतर्गत चार वेद, चार उपवेद, छः वेदांग, मीमांसा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, 64 कलाएं तथा अनेकों विद्याएँ समाहित हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा के अंतर्गत वेदों तथा धर्मशास्त्रों में

जीवनमूल्य वर्णित हैं। ज्ञान परम्परा अनादि काल से चली आ रही है। विष्णुपुराण में वर्णित है :-

"गायन्ति देवा: किल गीतकानि धान्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।

स्वर्गापवार्गा स्पदहेतु भूते भवन्ति भूय: पुरुषा: सुरत्वात।"[4]

अर्थात् भारत भूमि पर जन्म लेने के लिए देवता तथा असुर सभी तरसते हैं क्योंकि यहाँ से स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है।

वेद भारतीय धर्म तथा दर्शन का भण्डार हैं। भारतीय धर्म में जो जीवन शक्ति दृष्टिगोचर होती है उसका मूल कारण वेद ही हैं। वेद अक्षय विचारों का मानसरोवर है, जहाँ से विचारधारा प्रवाहित होकर भारतभूमि के मस्तिष्क को उर्वर बनाती हुई निरन्तर बहती है तथा अपनी सत्ता के लिए उसी उद्गम भूमि पर अवलम्बित रहती है। वेद भारतीय साहित्य के मात्र सर्वप्रथम ग्रन्थ ही नहीं हैं बल्कि मानवमात्र के इतिहास में इनसे बढ़कर प्राचीन ग्रन्थ की अभी तक उपलब्धि नहीं हुई है। वेद दुनिया के प्रथम धर्मग्रन्थ हैं। वे प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का अथाह भंडार हैं। अन्य धर्मों की उत्पत्ति का आधार भी वेद ही माने जाते हैं। उन धर्मों के अनुयायियों ने परवर्ती काल में वेदों के ज्ञान को अपने-अपने ढ़ंग से विभिन्न भाषाओं में प्रचारित किया। 'वेद ईश्वर द्वारा ऋषियों को सुनाए गए ज्ञान पर आधारित हैं, इसलिए इन्हें 'श्रुति' भी कहा गया है।'[5] वेदों में मानव जीवन की हर समस्या का समाधान बताया गया है। इनमें ब्रह्मा (ईश्वर), देवता, ब्राह्मंड, ज्योतिष, गणित, रसायन, औषधि, प्रकृति, खगोल, भूगोल, धार्मिक नियम, इतिहास, रीति रिवाज इत्यादि लगभग सभी विषयों से सम्बंधित ज्ञान का भण्डार है। वेदों में जीवन मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है तथा ज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन बताया गया है। 'अहिंसा परमो धर्म:' अर्थात् अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है। का सिद्धांत वेदों और शास्त्रों का मूलभूत सिद्धांत है। अहिंसा के माध्यम से मनुष्य अपने भीतर करुणा, प्रेम तथा शान्ति का विकास करता है। सत्य का पालन, सेवाभाव, करुणा तथा दूसरों के प्रति सहानुभूति व्यक्ति को आत्मिक शुद्धि की ओर ले जाते हैं।

यह सत्य है कि लोक में ज्ञान की प्रशंसा और अज्ञान की निन्दा होती है। 'जो वेद को अध्ययन करने के पश्चात (भी उसके) अर्थ को नहीं जानता, वह ठूंठ केवल भार को ढोने वाला है। (इसके विपरीत) जो अर्थ को जानने वाला होता है, वह (इस लोक के) समस्त कल्याणों को प्राप्त करता है तथा ज्ञान के द्वारा (अपने) पापों को विध्वस्त करके (अंत में) स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है। जो ग्रहण (कंठस्थ) कर लिया गया, (किन्तु) (समझा) नहीं गया (तथा जिसका) शब्द के रूप में (केवल) उच्चारण किया जाता है, यह अग्निरहित सूखी लकड़ी के समान कभी प्रकाशित नहीं होता।

वेदों के अध्ययन को सरल तथा सुगम बनाने के लिए छ: वेदांगों का प्रणयन हुआ। बहुत सी उन विद्याओं अथवा विषयों का जिनके सूक्ष्म संकेत इन ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में विद्यमान थे, व्यवस्थित एवं विस्तृत विवेचन करके वेदांग के रूप में छ: प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई। ये हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष ।

वेद के अंतिम भाग उपनिषद् हैं। इन रत्न ग्रन्थों में वैदिक ऋषियों ने आध्यात्मिक विद्या के गूढ़तम रहस्यों का विशद विवेचन किया है। भारतीय तत्त्व-ज्ञान का मूल स्रोत इन्हीं उपनिषदों में है। उपनिषद् वास्तव में आध्यात्मिक मानसरोवर हैं जिनसे भिन्न-भिन्न ज्ञान की सरिताएँ निकलकर इस पुण्य भूमि पर मानवमात्र के सांसारिक अभ्युदय तथा कल्याण के लिए प्रवाहित होती हैं। उपनिषद् वे ग्रन्थ हैं जो मनुष्य को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाते हैं। संस्कृत साहित्य में उपनिषदों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। अन्य शब्दों में, भारत के बुद्धि रूपी वृक्ष पर उपनिषद् से अधिक सुन्दर अन्य कोई पुष्प नहीं है। उपनिषद् का अर्थ है 'अध्यात्मविद्या।'[6] इस शब्द की उत्पत्ति 'सद्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय जोड़ने तथा 'उप' तथा 'नि' उपसर्ग के जोड़ने से हुई है। 'उप' का अर्थ है 'समीप', 'नि' का अर्थ है 'निश्चयपूर्वक' अथवा 'निष्ठापूर्वक' और 'सद्' का अर्थ है 'बैठना'। अर्थात् 'जिस विद्या के अध्ययन से दृष्टानुश्रविक विषयों से वितृष्ण मुमुक्षुजनों की संसार-बीजभूत अविद्या नष्ट हो जाती है, जो विद्या उन्हें ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है तथा जिसके परिशीलन से गर्भवासादि दु:ख-वृन्दों का सर्वदा शिथिलीकरण हो जाता है, वही अध्यात्म विद्या उपनिषद् है। 'सद्' धातु के तीन अर्थ होते हैं। 'विशरण' (विनाश होना), 'गति' (प्राप्ति होना) और 'अवसादन' (शिथिल होना)। इस प्रकार से उपनिषद् को अन्य

शब्दों में 'वह विद्या जिससे मनुष्य की अविद्या का नाश होता है, ब्रह्म की प्राप्ति होती है तथा दु:खों का निवारण होता है।' कहा जाता है। उपनिषद् को वैदिक साहित्य के अंत में रचे जाने के कारण 'वेदान्त' भी कहा जाता है। उपनिषदों में ज्ञान के माध्यम से आत्मा के स्वरूप को जानने का मार्ग बताया गया है। यह ज्ञान केवल बौद्धिक ज्ञान नहीं, आत्मज्ञान है जो ध्यान, तपस्या तथा वेदों के अध्ययन से प्राप्त होता है। वेदों के अध्ययन और उनसे प्राप्त ज्ञान को जीवन में उतारने से व्यक्ति विभिन्न जीवन मूल्य समाज को प्रेषित करता है।

उपनिषदों में इस बात पर बल दिया गया है कि मनुष्य को ज्ञान प्राप्ति करनी चाहिए क्योंकि यही अमृतत्त्व का सेतु है 'अमृतस्येष सेतु:।'[7] ज्ञान प्राप्ति तब होती है जब मनुष्य को ज्ञान हो जाता है कि यह शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि इत्यादि सब अचेतन हैं। इनको प्रेरित करने वाली शक्ति 'आत्मा' चेतन है, जो कि जड़ तथा चेतन से पूर्णत: पृथक है। सुख-दु:ख, राग-द्वेष तथा माया-मोह इत्यादि सब शरीर के धर्म हैं। आत्मा इन सभी धर्मों से रहित है। पार्थिव शरीर नश्वर है जबकि आत्मा शाश्वत है, अमर है। केवल मानव शरीर नष्ट होता है, आत्मा तो मनुष्य के कर्मों के अनुसार नया शरीर धारण कर लेती है। अत: आत्मा परमात्मा का ही अंश है। जो आत्मा एक प्राणी में है, वही आत्मा अन्य प्राणियों में भी है। सभी में एक ही परमात्मा का अंश है। मनुष्य को जब यह ज्ञान हो जाता है तब निष्कर्षस्वरूप उसमें 'बसुधैव कुटुम्बकम' की भावना प्रबल होती है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में वर्णित है कि ईश्वर के नाम का स्मरण करके उपनिषद् का आरम्भ किया जाता है। यथा:- 'ॐ शं नो मित्र: शं वरुण: .....ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:'[8]। शान्ति शब्द का तीन वार उच्चारण करने से आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक – तीनों प्रकार के विघ्नों का सर्वथा उपशमन हो जाता है। भगवान शांतिस्वरूप हैं, अत: उनके स्मरण से सब प्रकार की शान्ति निश्चित है।

'ब्राह्मण उपनिषद् साहित्यम्' में माता, पिता, आचार्य तथा अतिथि की सेवा करने सम्बन्धी विस्तृत व्याख्या की गई है। 'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।'[9] अर्थात् 'पुत्र! तुम माता में देव बुद्धि रखना, पिता में देव बुद्धि रखना, आचार्य में देव बुद्धि रखना, तथा अतिथि में भी देव बुद्धि रखना।' आशय यह है कि इन चारों को ईश्वर की

प्रतिमूर्ति समझकर श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक सदा इनकी आज्ञा का पालन, नमस्कार और सेवा करते रहना। इन्हें सदा अपने विनयपूर्ण व्यवहार से प्रसन्न रखना। जगत् में जो-जो निर्दोष कर्म हैं, उन्हीं का सेवन करना चाहिए। भारतीय ज्ञान परम्परा में दान की महत्ता भी स्पष्ट वर्णित है। 'श्रद्धया देयम, अश्रद्धया अदेयम'[10] अर्थात् श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिए; बिना श्रद्धा के नहीं देना चाहिए, क्योंकि बिना श्रद्धा के दिया हुआ दान आदि कर्म असत माने गए हैं।

महाभारत विशालकाय ग्रन्थ है, महाकाव्य है। श्रीमद्भगवद्गीता सात सौ श्लोकों में उसका सारतम अंश है, भाग है, जो कृष्ण और अर्जुन के संवाद के रूप में हैं। इन श्लोकों में नि:श्रेयस प्राप्ति के उपाय इतनी सुबोध तथा सरल भाषा में अभिव्यक्त कर दिए गए हैं कि सर्वसाधारण उन्हें आसानी से समझ सकते हैं। गीता के महत्त्व का कारण उसकी समन्वय दृष्टि है, इसीलिए गीता की उपमा कामधेनु तथा कल्पवृक्ष से की जाती है। गीताज्ञान के वक्ता स्वयं श्रीकृष्ण थे, जो उस युग के परम विद्वान तथा कर्तव्यपरायण पुरुष थे। गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को युद्ध के मैदान में जीवन, कर्म, धर्म और मोक्ष के बारे में उपदेश देते हैं। गीता का अध्यात्म पक्ष जितना समन्वयात्मक है उसका व्यावहारिक पक्ष उतना ही मनोरम है। गीता का परम् उद्देश्य व्यावहारिक शिक्षा देना है। इसके अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन युग में भारतवर्ष में चार प्रकार के पृथक-पृथक मार्ग प्रचलित थे। ये थे कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग, ध्यानमार्ग तथा भक्तिमार्ग। प्रत्येक मार्ग के पथिक भिन्न थे, परन्तु भगवान ने गीता का प्रचार कर इन अलग-अलग मार्गों का अपूर्व समन्वय किया है। अन्य शब्दों में, जिस प्रकार प्रयाग में गंगा, यमुना तथा सरस्वती की धाराएं भारत देश को पवित्र करती हुई त्रिवेणी के रूप में बह रही हैं, उसी प्रकार कर्म, ज्ञान, ध्यान तथा भक्ति की धाराएं मिलकर गीता में जिज्ञासुओं की ज्ञानपिपासा मिटाती हुई भगवान् की ओर बढ़ रही हैं। गीता की यह अपनी समन्वय विशिष्टता है। गीता के उपदेशों की दिशा सुस्पष्ट है। ये उपदेश मानव जीवन की विविध परिस्थितियों से सम्बंधित गहन और व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करते हैं। ये शिक्षाएं न केवल आत्मिक उन्नति के लिए हैं बल्कि जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। गीता की प्रमुख शिक्षा है, कर्तव्य का पालन करना। यथा - 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन, मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोअस्त्वकर्मणि'[11] अर्थात्

मनुष्य का कर्म करने का अधिकार है लेकिन फल की चिंता नहीं करनी चाहिए। आत्मा की अमरता, संतुलित जीवन, नि:स्वार्थ सेवा, स्वधर्म का पालन, आत्म संयम तथा सभी जीवों के प्रति समान दृष्टि का भाव रखना इत्यादि श्रीमद्भगवद्गीता की प्रमुख शिक्षाएं वर्णित हैं।

रामायण भारतीय ज्ञान सागर का मात्र एक धार्मिक ग्रन्थ नहीं है, बल्कि नैतिक और आदर्श जीवन यापन करने का एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इसके अध्ययन से हमें अनेक शिक्षाएं मिलती हैं। यथा – 'वचनबद्धता, समर्पण और त्याग, भाईचारे का आदर्श, मैत्री और विश्वास, क्षमा और सहनशीलता तथा अहंकार का पतन'।[12] 'रामचरितमानस' का मूल मंत्र है लोककल्याण, परस्पर प्रेम भावना, रामराज्य की स्थापना, लोकमंगल की भावना, परोपकार, त्याग, सदाचार, नि:स्वार्थ भाव, सहजता, समर्पण, प्रबल भक्ति भावना, आदर्श समाज, आदर्श जीवन चरित्र इत्यादि। इन्हीं मूल शिक्षाओं के आधार पर वर्तमान में भी 'रामचरितमानस' प्रासंगिक है।

महाभारत भारतीय आध्यात्मिक साहित्य का उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसके गहन अध्ययन के पश्चात व्यावहारिक जीवन जीने के लिए जो शिक्षाएं मिलती हैं, वे हैं – 'शान्ति एवं सहनशीलता, कर्तव्य एवं नि:स्वार्थ कर्म, धर्म का पालन, अहंकार का अंत, स्त्री सम्मान, नैतिक नेतृत्व तथा जीवन में क्षमा का महत्त्व'[13] ।

इन धार्मिक ग्रन्थों की शिक्षाओं का अध्ययन कर स्पष्ट हो जाता है कि ये केवल ग्रन्थ मात्र नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक पद्धति है। ये शिक्षाएं हर परिस्थिति में मनुष्य को उचित मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। इनका स्पष्ट सन्देश यही है कि जीवन में चुनौतियाँ और संघर्ष अवश्य आएंगे लेकिन हमें हमेशा धर्म, सत्य और कर्तव्य का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए।

योग, भारतीय दर्शन की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है तथा भारतीय ज्ञान परम्परा की सर्वाधिक प्राचीन तथा समाचीन सम्पत्ति है। योग, भारतीय दर्शन की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है तथा भारतीय ज्ञान परम्परा की सर्वाधिक प्राचीन तथा समाचीन सम्पत्ति है। 'योग' शब्द 'युज' धातु (युज समाधौ) से निष्पन्न होता है। 'योग' का व्युत्पत्तिपरक अर्थ 'समाधि' है। पतंजलि योग का लक्षण है 'योगचित्तवृत्तिरोध'[14] अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकना। 'चित्त' से आशय अंत:करण (बुद्धि, मन और अहंकार) से है।

यह एक ऐसी विद्या है जिसमें ईश्वर जीवात्मा और प्रकृति के स्वरूप को स्पष्ट रूप से समझाया गया है। योग ज्ञान का एक ऐसा महत्वपूर्ण भण्डार है जो किसी भी प्रकार के वाद-विवाद से अलग तथा दूर है। आत्मा तथा परमात्मा के मिलन में योग ही भक्ति और ज्ञान का प्रधान सहायक माना जाता है। यह मुख्यत: मन, आत्मा और मोक्ष की प्राप्ति के उपायों पर केन्द्रित है। भारतीय धर्म प्रचारकों तथा दार्शनिकों ने योग की उपयोगिता को श्रेष्ठ स्वीकार किया है तथा उसकी विवेचना अपने-अपने ढंग से की है। प्राचीन ऋषियों-मुनियों के प्रतिभा ज्ञान की अंतर्दृष्टि की उत्पत्ति में योग ही प्रधान कारण माना जा सकता है। ज्ञान परम्परा के अंतर्गत संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में योग प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन है। योग अत्यधिक प्राचीन अध्यात्म प्रक्रिया है जिसका सुन्दर विवेचन ऋग्वेद, सहिंताओं तथा उपनिषदों में मिलता है। 'महर्षि पतंजलि ने योग का केवल अनुसंधान किया तथा प्रतिपादित शास्त्र का उपदेश मात्र दिया। अत: वे योग के प्रवर्तक न होकर प्रचारक या संशोधकमात्र हैं'[15] महर्षि पतंजलि ने योगसूत्रों के माध्यम से योग को एक व्यवस्थित रूप दिया तथा योग के आठ अंगों को यम (संयम), नियम (पालन), आसन (मुद्रा), प्राणायाम (श्वास), प्रत्याहार (वापसी), धारणा (एकाग्रता), ध्यान के रूप में (अवशोषण) और समाधि (ध्यान) पारिभाषित किया।[16] गुरु गोरखनाथ के 'नाथ सम्प्रदाय' में योग का इतना आदर है कि उस सम्प्रदाय को 'योगी सम्प्रदाय' के नाम से पुकारा जाता है। नाथपंथी सिद्ध योगी हठयोग के परमाचार्य थे।

अन्न के दुरूपयोग का निषेध – भारतीय शास्त्रों में अन्न के दुरूपयोग का निषेध वर्णित है। तैत्तिरीयोपनिषत में इसकी विवेचना की गई है यथा :-

'अन्नं न परिचक्षीत। तद व्रतं। आप: वै अन्नम।

अन्नं बहु कुर्वीत। तद व्रतं।

पृथिवी वा अन्नं। आकाशोआन्नद:।

न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत। तद व्रतं।[17]

अर्थात् भोजनपात्र में अधिक अन्न लेकर अवशिष्ट अन्न का त्याग नहीं करना चाहिए। उसका त्याग न करना ही उपासक का व्रत है। सभी प्रकार के अन्न

की उत्पत्ति में 'अप' (जल) कारण है। इस प्रकार श्रुति 'अप' को अन्न कहती है। उपासक जीवन निर्वाह के लिए अल्प अन्न प्राप्त होने पर भी उसे बहुत माने। यद्यपि स्वजन, अतिथि और अभ्यागतों के लिए बहुत अन्न को उत्पन्न करे या इनके लिए बहुत अन्न का संग्रह करे। अल्प समझकर अन्न की उपेक्षा और असंतोष नहीं करना चाहिए अपितु संतुष्ट होकर, ईश्वर का आभार व्यक्त करना चाहिए। निवास या भोजन के लिए आए विद्वान ब्राह्मण से लेकर चाण्डालपर्यन्त किसी भी अतिथि को प्रतिकूल वचन नहीं बोलना चाहिए बल्कि उसकी यथोचित व्यवस्था कर उसका निराकरण करना चाहिए। इससे अतिथि सत्कार की उदात्त भावना निहित होती है। 'भुंजते त्वघं पापं ये पचन्त्यात्मकारणात'[18] अर्थात् 'केवल अपने और अपने परिवार के लिए भोजन बनाने वाले को पाप खाने वाला कहा है। अन्नदाता जैसी श्रद्धा व सम्मान से अतिथि को अन्नदान करता है, उसे वैसे ही अन्न प्राप्त होता है। इस प्रकार अन्न के दुरूपयोग, उसके सम्मान तथा उसकी महिमा सम्बन्धी शिक्षाएं हमारे ग्रंथों में वर्णित हैं।

ज्ञान तो स्वयं में ही प्रकाश है। इसकी अनेक विशेषताएं भारतीय संस्कृति से जुड़ी हुई हैं। ज्ञान की विशेषताओं के माध्यम से अन्धकार से उजाले की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर मार्ग की विवेचना की है। बृहदारण्यकोपनिषद के अनुसार :-

"असतो मा सद्गमय।

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मृत्योर्मामृतं गमय।"[19]

अर्थात् 'हमें असत्य से सत्य की ओर ले चलो। अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो।' महाकवि तुलसीदास उत्तरकाण्ड में लिखते हैं :-

'दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज काहू नहिं व्यापा।।

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।[20]

अर्थात् रामराज्य में दैहिक, दैविक तथा भौतिक किसी भी प्रकार का दुःख नहीं है। सभी परस्पर प्रेमपूर्वक रहते हैं तथा अपने धर्म का अनुसरण करते हैं।

जीवन मूल्य :- प्रेम, करुणा, न्याय, समानता, सत्य, ईमानदारी, त्याग तथा सहनशीलता इत्यादि प्रमुख जीवन मूल्य जाने जाते हैं। इनके अतिरिक्त वेदों, उपवेदों, उपनिषदों, पुराणों, दर्शनशास्त्रों, आध्यात्मिक ग्रन्थों तथा विद्याओं में निम्नलिखित शिक्षाएं और जीवन मूल्य वर्णित हैं :-

1. 'सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया:' अर्थात् सभी सुखी व निरोगी रहें।

2. 'अहिंसा परमोधर्म:' अर्थात् अहिंसा सर्वोच्च धर्म है।

3. 'त्यागोपरि सर्वम' अर्थात् त्याग सर्वश्रेष्ठ है।

4. 'सत्यं वद, धर्मं चर' अर्थात् सत्य बोलो, धर्म का पालन करो।

5. 'प्रेमेव हि मनुषस्य जीवनस्य आधार: अर्थात् प्रेम ही मानव जीवन का आधार है।

हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से साहित्यकारों ने समय-समय पर जीवन मूल्यों के प्रचार-प्रसार के लिए अपनी लेखनी चलाई है। कविताओं के साथ-साथ उपन्यासों, कहानियों, नाटकों तथा अन्य विधाओं के माध्यम से भी साहित्य चिंतकों ने जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में पाठकों को जागरूक करने हेतु श्रेष्ठ रचनाएं साहित्य जगत को दी हैं। इस सन्दर्भ में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'ठाकुर का कुआं' तथा 'कफ़न' श्रेष्ठ हैं। उनके 'निर्मला', 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' तथा 'गोदान' उपन्यासों में उच्च वर्ग तथा जमींदारों द्वारा जीवन मूल्यों का हनन किस प्रकार से तत्कालीन समाज में किया जाता था, का स्पष्ट प्रमाण चित्रित है।

जीवन मूल्यों की संकल्पना मानव जीवन के व्यापक जीवन दर्शन पर आधारित है। जीवन मूल्य कहते ही स्पष्ट हो जाता है कि समाज में कहीं न कहीं इन मानव मूल्यों का ह्रास हो रहा हैइनमें कमी आ रही है ,। मानव जीवन में सुखरे जीवन प्रगति तथा हर्ष का आधार हमा ,शान्ति ,समृद्धि , मूल्य हैं। इनके सार्वभौमिक महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। भारत के विश्वगुरु होने का आधार भारतीय ज्ञान परम्परा मूल रूप में रही है। हमारे वेद, दर्शनशास्त्र,पुराण , उपनिषद्,उपवेद , आध्यात्मिक ग्रन्थ तथा विद्याएँ रही हैं। भारतीय सभ्यताति और परम्पराएं रही हैंश्रेष्ठ संस्कृ ,। भारत की

प्राचीन शिक्षा पद्धति रही है। हमारी गुरुकुल परम्परा रही है। हमारी धार्मिक मान्यताएं रही हैं। उच्च आदर्श रहे हैं। ज्ञानविज्ञान तथा चिकित्सा - केंद्र रहे हैं। हमारे ऋषिमुनि तथा विद्वानों की तपस्या रही है ,। शताब्दियों वर्ष पूर्व भारतवर्ष में स्थापित उच्च शिक्षा केन्द्र तथा नालन्दातक्ष ,शिला , विक्रमशिला तथा वल्लभी विश्वविद्यालय रहे हैं। निसंदेह आक्रान्ताओं ने : इन्हें नष्ट करने का प्रयास किया। लगभग दो सौ वर्षों तक अंग्रेजी शासन ने भी भारतीय शिक्षा पद्धतिति को कमज़ोर करने सभ्यता तथा संस्कृ ,भाषा , हेतु राष्ट्र विरोधी नीतियों का निर्माण किया।की 'फूट डालो और राज करो' नीति पर चलकर अनेकों षड्यंत्रों के माध्यम से देश को क्षति पहुंचाई। वर्तमान समय में देश बदल रहा है। परिस्थितियां परिवर्तित हो रही हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा को केंद्र में रखकर समाज के कल्याण हेतु नीतियों का निर्माण किया जा रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से 2020 चूल -सैकड़ों वर्षों से देश में क्रियान्वित विसंगतिपूर्ण शिक्षा पद्धति में अमूल देश में परिवर्तन का प्रमुख उदाहरण है ,परिवर्तन करना। अखिल भारतीय स्तर पर , स्तर पर तथा स्थानीय स्तर पर भारतीय ज्ञान परम्पराराज्य , श् ,सभ्यतारेष्ठ संस्कृतिपरम्पराओं तथा आदर्शपूर्ण जीवन यापन करने हेतु , विभिन्न संगोष्ठियों के माध्यम से आम जनमानस तथा शिक्षार्थियों का मार्गदर्शन किया जा रहा है। देश के विकास तथा इसकी समृद्धि के लिए आम जनमानस को भी जागरूक किया जा रहा है ताकि वे वर्ग भी समाज तथा देश के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकें। भारत को 'विकसित भारत' बनाने में अपनी श्रेष्ठ भूमिका निभा सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आशि गोयल, प्रभात खबर, 12 मार्च 2025।

2. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास (भूमिका), नागरी प्राचारिणी सभा, काशी, वाराणसी, (उ. प्र.)।

3. मनुस्मृति 2.20।

4. विष्णुपुराण 2.3.24, मनोज पब्लिकेशन, दिल्ली।

5. आचार्य दीपक, वैदिक सनातन धर्म, पृ.–146, स्थितप्रज्ञा संस्थान रायपुर (छ.ग.)।

6. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ.–37, चौखम्बा संस्कृत भवन,वाराणसी।

7. डॉ. पुष्पा गुप्ता, कठोपनिषद, पृ.46, चौखम्बा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी।

8. डॉ. बलदेव, वैदिक संग्रह एवं व्याख्या, पृ. 357, आचार्य प्रकाशन, रोहतक (हरियाणा)।

9. वही- पृ. 379।

10. वही- पृ. 380 (गीता 19.29)।

11. आचार्य दीपक, वैदिक सनातन धर्म, पृ.–106, स्थितप्रज्ञा संस्थान रायपुर (छ.ग.)।

12. वही- पृ. 98।

13. वही- पृ. 102।

14. आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ.–293, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी।

15. वही- पृ. 284।

16. आचार्य दीपक, वैदिक सनातन धर्म, पृ.–297, स्थितप्रज्ञा संस्थान रायपुर (छ.ग.)।

17. स्वामी त्रिभुवनदास, तैत्तिरीयोपनिषत, पृ.–208-211, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

18. वही- पृ. 212 (गीता 3.13)।

19. बृहदारणयकोपनिषद 1.3.28।

20. हनुमानप्रसाद पोद्दार, रामचरितमान (उत्तरकाण्ड), पृ.–930, गीताप्रेस गोरखपुर (उ.प्र.)।

Copyright © 2025 Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).